तृतीय अध्याय

"अलका सरावगी के उपन्यास : विषयवस्तु की कलात्मकता का मूल्यांकन"

तृतीय अध्याय

''अलका सरावगी के उपन्यास : विषयवस्तु की कलात्मकता का मूल्यांकन''

विषय-प्रवेश :

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासकारों में, खासकर महिला उपन्यासकारों में अलका सरावगी का नाम बहुचर्चित है। उन्होंने कहानी तथा उपन्यास लिखकर समकालीन लेखकों में अपनी अलग पहचान बनाई है। अलका ने अपने उपन्यासों में आजादी के पूर्व का और आजादी के बाद का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर स्वदेश-प्रेम जगाने की प्रेरणा दी है। उनके उपन्यासों के विषयों में वैविध्य नजर आता है। अलका जी ने अपने उपन्यासों में मारवाड़ी समाज को केंद्र में रखा है। उन्होंने अपने उपन्यासों में मारवाड़ी समाज के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, अंधविश्वास, कुरीतियाँ तथा मारवाड़ी समाज की नारियों का यथार्थ अंकन किया है। विवेच्य उपन्यासों की विषयवस्तु का कलात्मक मूल्यांकन यहाँ प्रस्तुत है -

3.1 कलि-कथा : वाया बाइपास :

'कलि-कथा : वाया बाइपास' अलका सरावगी का पहला सफल एवं बहुचर्चित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास सन् 1998 में आधार प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में लेखिका ने छह पीढ़ियों की कथा किशोर बाबू के जिंदगी की तीन अवस्थाओं के माध्यम से रेखांकित की है। अशोक मनोरम के मतानुसार - ''अनेक श्रेष्ठ उपन्यासों में 'कलि-कथा : वाया बाइपास' को मूर्धन्य स्थान पर रखा जा सकता है। यह अलका सरावगी की उम्दा कृति है। कलकत्ता की स्थापना और मारवाडियों की अपनी छह पीढ़ियों का इतिहास लिखकर अलका जी ने न केवल मारवाडियों के निजी जीवन का चित्र खिंचा है बल्कि देश की आजादी और उसके बाद के पतन का भी सघन चित्र बनाया है। अलका सरावगी का यह पहला उपन्यास है। इससे इन्हें अनुपम सफलता प्राप्त हुई और

हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यासकारों की श्रेणी में स्थान मिला है।''[1] स्पष्ट है कि लेखिका ने किशोरबाबू के माध्यम से मारवाड़ी समाज के चित्रण के साथ-साथ देश की आजादी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काल की स्थिति एवं गति रेखांकित की है -

3.1.1 आरंभ -

जिस प्रकार जीवन में हर घटना एक घटना का आरंभ, विकास और अंत होता है उसी प्रकार उपन्यास लेखन के भी आरंभ, विकास और अंत आदि सोपान माने जा सकते हैं। आरंभ याने शुरू करना। यह वह अवस्था है जिसमें प्रथमत: कार्य शुरू होता है। प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ वर्णनात्मक शैली में किया गया है। उपन्यास के आरंभ में मारवाड़ी परिवार का किशोरबाबू नामक व्यक्ति की उम्र के 72 साल में दिल के ऑपरेशन के पश्चात् उनके व्यवहार में आया हुआ परिवर्तन का वर्णन है। किशोरबाबू का यह परिवर्तन उनके परिवारवालों को पागलों जैसा लगता है। वे कलकत्ते के गलियों-सड़कों तथा बाजारों, लैंसडाऊन रोड़ पर दौड़ती गाड़ियों के बीच घूमते रहते हैं। उपन्यास के आरंभ में ही लेखिका लिखती है - ''कलकत्ते के लैंसडाऊन रोड़ पर तेजी से दौड़ती गाड़ियों, बसों - मिनी बसों के धुएं, चीखते हॉर्न और ब्रेक लगाने की आवाजों के ठीक बीचोंबीच किशोरबाबू आगा-पीछा न देखते हुए शहर के सबसे नए और सबसे महंगे रेस्तरां 'गोल्डन हारवेस्ट' के सामने से सड़क पार करते देखे गए -''[2] कहना आवश्यक नहीं कि प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ वर्णनात्मक शैली में है ही साथ ही प्रकृति-चित्रण तथा स्थान का भी चित्रण अवश्य मिलता है।

3.1.2 विकास -

'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास के विकास में सन् 1857 के स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर सन् 2000 तक की ऐतिहासिक घटना के साथ-साथ आजादी के बाद की परिस्थितियों का चित्रण किशोरबाबू के जरिए किया है। छह पीढ़ियों की कथा किशोरबाबू के जिंदगी के तीन सोपानों के माध्यम से प्रस्तुत है। उपन्यास की कहानी कलकत्ते में बसे किशोरबाबू नामक एक मध्यवर्गीय मारवाड़ी पात्र के इर्द-गिर्द घूमती है। सन् 1925 में जन्में किशोरबाबू को अपने जीवन के बहत्तरवें साल में बाइपास सर्जरी करनी पड़ती है। उसके बाद उसकी

---

1. सं. मधुप मेहता - गगनाञ्चल, त्रैमासिक, जनवरी-मार्च, 2004, पृष्ठ - 179
2. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 5

दुनियाँ और स्वभाव बदल जाता है। किशोरबाबू अपनी एक जिंदगी में तीन जिंदगियाँ जी लेते हैं। उनकी जिंदगी का पहला सोपान अपने स्कूल के मित्रों सुभाषबाबू का समर्थक शांतनु और गांधी जी का अनुयायी अमोलक के साथ गुजरता है जिसमें सन् 1940 से 47 के बीच की घटनाओं का वर्णन है। साथ ही सन् 1943 का बंगाल का अकाल, सन् 1946 का द ग्रेट कैलकटा किलिंग और सन् 1947 का देश विभाजन आदि का अंतर्भाव है। इन घटनाओं के माध्यम से उपन्यास में तत्कालीन यथार्थ अंकित किया है। जिंदगी का दूसरा सोपान उसके बाद के पचास सालों का है जिसमें जिंदगी के पहले सोपान का दूसरे सोपान से कोई संबंध नहीं है। तीसरा सोपान बाइपास सर्जरी के बाद उस वर्तमान से आरंभ होता है जो हर वक्त हमारे आस-पास मौजूद है।

प्रस्तुत उपन्यास के आरंभ में किशोरबाबू की बाइपास सर्जरी होने के कारण वह कलकत्ते के गलियों में घूमता हुआ नजर आता है। बाइपास सर्जरी के कारण उनका दिल और दिमाग बदल जाता है। कलकत्ते के रोड़ पर घूमते-घूमते वह अपनी बचपन की स्मृतियों में पहुँच जाता है और अपने परिवार के इतिहास को भी याद करता है। उनके बचपन के दो मित्र है - शांतनु और अमोलक। शांतनु सुभाष बाबू के विचारों से प्रभावित है ओर अमोलक गांधी जी के विचारों से प्रभावित है। किशोर के स्कूली जीवन में इन दोनों का वैचारिक दूवंदूव चलता रहता है। किशोर अपने मारवाड़ी समाज तथा परिवार में ही कैद है। वह उससे ऊपर उठने का प्रयास करता है लेकिन एक भीरूता या घबराहट उसके मन में पैदा होती है। इस बात से स्पष्ट है कि मारवाड़ी समाज अपने समय के ऐतिहासिक घटना, प्रसंग तथा हलचलों से प्रतिबद्ध नहीं हो पाता। किशोरबाबू का जीवन अपने मित्र के वैचारिक दूवंदूव में जीते हुए खत्म होता है।

किशोरबाबू जब बड़े होते हैं तो वे अपने परिवार का आधार बनाते हैं। बड़े होकर कमाने लगते हैं। कमाकर साउथ कोलकाता में बड़ा घर बनाते हैं। कार खरीदते हैं। अपने बेटे तथा बेटियों को पढ़ाकर उनका ब्याह भी कराते हैं। लेकिन वे इसी बीच मामा के परिवार को भूल जाते हैं जो कभी उनके परिवार के जीवन का आधार था।

आजादी के चरमकाल में अर्थात् सन् 1997 में किशोरबाबू की बाइपास सर्जरी होती है लेकिन किशोरबाबू को अफसोस इस बात का है कि उनका बचपन का मित्र शांतनु जो बचपन में अंग्रेजी योजनाद्वारा कमाई गई पैतृक संपत्ति को त्यागने के लिए तत्पर था लेकिन आज वह समाज सेवा के नाम पर एन.जी.ओ. संस्था (गैर सरकारी सेवा संस्था) द्वारा अकूत धन कमाकर पूँजीपति बन गया है। किशोरबाबू का मित्र अमोलक जो गांधी जी के विचारों का अनुयायी है उसकी बाबरी मस्जिद ध्वंस में हत्या दिखाई है। जिसके मरने के बाद किशोरबाबू के अंदर अमोलक की आत्मा के रूप में गांधीवाद फिर से जी उठता है।

किशोरबाबू की कथा के बावजूद उपन्यास में अनेक घटना, प्रसंग तथा विषय है। मारवाड़ी समाज का अंधविश्वास, अकाल पीड़ितों की दुर्दशा, दो पीढ़ियों के बीच का संघर्ष, अंग्रेजों के आगमन पर निर्माण हुई मिश्रित खून के लोगों की समस्या, अंग्रेजों का भारतीय लोगों के साथ जानवरों जैसा व्यवहार, बाबरी मस्जिद ध्वंस, गांधी जी की हत्या, जालियनवाला बाग हत्याकांड, प्लासी की लड़ाई, नारी का अकेलापन, अशिक्षा, विधवा विवाह को मान्यता, आंतरजातिय विवाह को मान्यता, अवैध यौन संबंध, स्त्री भ्रुण हत्या, मारवाड़ी समाज का विदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम, सांप्रदायिकता, धर्मांधता, पर्यावरण प्रदूषण और पेट्रोल खत्म होने की समस्या ये वे विषय तथा समस्याएँ (घटना तथा प्रसंग) हैं जो आजाद भारत को पतन के राह पर ले जानेवाली है। इससे बचना होगा नहीं तो विनाश अटल है। अत: कहना आवश्यक नहीं कि उपन्यास में चित्रित घटना, प्रसंग तथा विचार वर्तमान समाज में प्रासंगिक है जिसके कारण प्रस्तुत उपन्यास के विकास में कलात्मकता दिखाई देती है।

3.1.3 **संघर्ष** -

संघर्ष याने कठिनाइयों और बाधाओं से बचने के लिए किया जानेवाला प्रयास या विरोध। संघर्ष से तात्पर्य है - अन्याय-अत्याचार का विरोध करते हुए, जीवन में आई हुई हर मुसीबतों या कठिनाइयों का सामना करने से है। भाऊसाहेब नवले संघर्ष के बारे में ठीक ही लिखते हैं - ''जीवन में अनेक अन्याय-अत्याचारों, संकटों एवं कठिनाइयों का सामना करना और जीवित रहना ही संघर्ष है।''[1] स्पष्ट है कि जीवन में आई हुई मुसीबतों तथा कठिनाइयों

---

1. भाऊसाहेब नवले - अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में संघर्ष-चेतना, अप्रकाशित, लघु शोध-प्रबंध से उद्धृत, दिसंबर 2001, पृष्ठ - 45

का सामना करने के लिए मनुष्य संघर्ष करता है। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी स्थिति का जिक्र मिलता है। किशोरबाबू अपनी बहू को सुख-चैन देने की वजह से किसी भी प्रकार का बंधन नहीं डालते। परिणामत: वह ब्यूटी सैलून में महीने में पाँच हजार खर्च करती है, बिंदी नहीं लगाती, क्लबों में डांस करती है और बच्चे पैदा न होने के लिए भी इलाज करवाती है। जिस रात किशोरबाबू को इस बात का पता चलता है उसी रात में किशोरबाबू एक सपना देखते हैं कि, अपनी बहू के पैरों पर पिता भूरामलजी अपनी पुरानी पगड़ी रखकर इज्जत बचाने के लिए संघर्ष करते हैं। तब किशोरबाबू का बहता खून जमने लगता है। उनके दिल की नब्बे प्रतिशत नलियां जाम होती है जिसे बाइपास सर्जरी द्वारा ही सुलझा जा सकता है - ''उनके दिल में पहली बार दर्द उठा। उनके दिल की नलियां नब्बे प्रतिशत जाम हो गई थी और उन्हें बाइपास ऑपरेशन से ही खोला जा सका था।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि किशोरबाबू का यह संघर्ष उनके जीवन जीने के लिए या बीमारी से छुटकारा पाने के लिए है। इसके अलावा प्रस्तुत उपन्यास में देशभक्त क्रांतिकारी बेटा केदार और उनके पिता रामविलास का संघर्ष, प्लासी की लड़ाई में इंग्रज-भारत का संघर्ष और हिंदू-मुस्लिमों का धार्मिक संघर्ष भी दिखाई देता है। साथ ही स्त्री-पात्र भी संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। स्त्री-संघर्ष के बारे में रामदेव शुक्ल ठीक ही लिखते हैं - ''कथा के स्त्री-पात्रों का संघर्ष चाहे वह किशोर की माँ का हो, उनकी मामी और भाभी का हो, वस्त्र के अभाव में घर के भीतर नंगी बैठी नर्स का हो, एक बेटे की प्रतीक्षा में पाँच-पाँच बेटियाँ जननेवाली सरोज का हो या उनकी आधुनिक बिटियों, बहू का हो, यहाँ तक कि बहुत कम समय के लिए आनेवाली हैमिल्टन की प्रेमिका या रामानंद कृष्ण की वैष्णवी का हो - आत्मीयता के साथ अंकित किया गया हो।''[2] कहना सही होगा कि उपन्यास में नारी-पात्रों का संघर्ष भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इनका संघर्ष अस्तित्व के लिए तथा जीवन जीने के लिए दृष्टिगोचर होता है।

3.1.4 **चरमसीमा -**

चरमसीमा उपन्यास का वह स्थल है जहाँ प्रतिपाद्य संवेदना पूर्णत: संवेद्य बन जाती है और पाठक शांति तथा अनुभव महसूस करता है। यह वह स्थल है जहाँ पाठक के जिज्ञासा की पूर्ति होती है और कुछ पाने की इच्छा भी। अलका सरावगी का 'कलि-कथा :

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 203
2. सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - वागर्थ, जनवरी 1999, पृष्ठ - 107

वाया बाइपास' उपन्यास भी इसके लिए अपवाद नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास में किशोर की बाइपास सर्जरी सफल होना, स्वाधीनता की प्राप्ति, बाबरी मस्जिद ध्वंस के समय का साम्प्रदायिक वातावरण शांत होना और सन् 1997 की स्वर्णजयंती तक की घटनाएँ पाठकों को संवेद्य बना देती है। उपन्यास की चरमस्थिति के संदर्भ में रामदेव शुक्ल कहते हैं - "मारवाड़ियों के आगमन से लेकर उनके व्यापार-प्रसार तक एवं स्वाधीनता-संग्राम से आरंभ होकर उसकी चरम परिणति तक अर्थात् विभाजन और स्वाधीनता प्राप्ति तक और उसके बाद बाबरी ध्वंस की त्रासदी और सन् उन्नीस सौ सत्तानबे की स्वर्णजयन्ती-प्रदर्शनी तक की कथा है।"[1] कहना आवश्यक नहीं कि रामदेव शुक्ल के उक्त कथन से उपन्यास की चरमसीमा दृष्टिगत होती है। सार यह कि उपन्यास की चरमसीमा भी कलात्मक प्रतीत होती है।

3.1.5 अंत -

जहाँ पाठक की जिज्ञासा की तृप्ति तथा संवेदनशीलता स्फुरित होती है वहाँ उपन्यास का अंत होता है। प्रस्तुत उपन्यास के अंत में तीनों मित्र 1 जनवरी, 2000 के दिन किए गए कौल के मुताबिक मिलते हैं, जो अविश्वसनीय प्रतीत होता है क्योंकि अमोलक बाबरी मस्जिद काण्ड में मरा था और बाद में उसे जीवित दिखाया है। लेखिका ने इस प्रसंग के लिए आधार या तर्क भी नहीं दिया है। अमोलक की मृत्यु प्रतीकात्मक दिखाई है। अमोलक गांधीवादी विचारों से प्रभावित था। उसकी मृत्यु याने गांधीवाद की मृत्यु है। आजादी के पहले जो गांधीवादी विचार थे, वह आज खत्म हो गए हैं, परंतु लेखिका अमोलक को जीवित दिखाकर यह सिद्ध करना चाहती है कि गांधीवादी विचार आज भी प्रासंगिक हैं। गांधी जी मरने के पश्चात् भी वे विचार कालबाह्य न होकर जीवित रहेंगे। प्रस्तुत उपन्यास का अंत एक नया प्रयोग लगता है। उसमें प्रतीक, कल्पना, व्यंग्य और व्यंजनाएँ आदि का सृजन दिखाई देता है। डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी के शब्दों में - "अंत में शांतनु - किशोर से मिलने आ सका असली अमोलक। तो फिर आत्मा किसकी आयी थी किशोर में? क्या डुप्लीकेट की यह सब कितना फिल्मी है, कितना प्रतीकात्मक ! कैसी-कैसी कल्पनाएँ, फैंटसियाँ, कैसे-कैसे यथार्थ, कैसे-कैसे स्वप्न ! कैसे-कैसे व्यंग्य, कैसी-कैसी व्यंजनाएँ। कितने-कितने प्रयोग, कैसी-कैसी विधियाँ ! अद्भुत सृजन।"[2] उक्त कथन से स्पष्ट होने में देर नहीं लगती कि प्रस्तुत उपन्यास का अंत एक नया प्रयोग तो है ही और कलात्मक भी है इसमें दो राय नहीं।

---

1. सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - वागर्थ, जनवरी 1999, पृष्ठ - 107
2. डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी - हिंदी उपन्यास : समकालीन विमर्श, पृष्ठ - 150

अत: कहना सही होगा कि लेखिका ने अपने उपन्यास के अंत में गांधीवादी विचारों की प्रासंगिकता बताई है, जो आज के हिंसावादी समाज को अहिंसावादी बनने के लिए पथ-दर्शक है।

संक्षेप में कहना सही होगा कि प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ वर्णनात्मक, कौतुहल-वर्धक, रोचक तथा जिज्ञासा उत्पन्न कर स्थान का भी जिक्र कराता है। विषयवस्तु के विकास में किशोरबाबू जिस प्रकार अपने जीवन में आई हुई बीमारी या समस्याओं को बाइपास करके सुविधाजनक रास्ते से या बगल के रास्ते से आगे निकल जाते हैं उसी प्रकार हर मनुष्य ने अपने जीवन में आई हुई समस्या से बाइपास कर आगे निकल जाना चाहिए। साथ ही आजादी के पहले और बाद का लेखा-जोखा तथा मारवाड़ी समाज का चित्रण विषयवस्तु के विकास को कलात्मक बना देता है। बावजूद इसके कि उपन्यास में अनेक विषय मौजूद है जो आज प्रासंगिक हैं। विषयवस्तु के संघर्ष में किशोरबाबू अपने जीवन-जीने के लिए या बीमारी से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष करते हुए परिलक्षित होते हैं। इसके अलावा कुछ पुरूष पात्र तथा नारी पात्र भी संघर्ष करते हैं। उपन्यास की चरमसीमा में आजादी की 50वीं वर्षगाँठ का चित्रण मिलता है। अंत फिल्मी तथा प्रतीकात्मक तो है ही साथ ही गांधीवादी विचारों को दोहराकर स्वदेश प्रेम जगाता है। अंतत: कहना होगा कि प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ, विकास, संघर्ष, चरमसीमा और अंत कलात्मकता का एक नया प्रयोग है इसमें संदेह नहीं।

3.2 **शेष कादम्बरी :**

'शेष कादम्बरी' अलका सरावगी का प्रकाशन क्रम की दृष्टि से दूसरा उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से सन् 2001 में हुआ। उपन्यास का शीर्षक दृविअर्थी है। मराठी भाषा में कादंबरी शब्द उपन्यास का पर्याय है और कादम्बरी उपन्यास की पात्र भी है जिसके नाम पर उपन्यास का शीर्षक रखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास में नायिका रूबी दी की पीड़ा तथा दु:ख को सहते हुए आत्महत्या की ओर प्रवृत्त होती है परंतु जब वह परामर्श के माध्यम से सामाजिक-कार्य करती है तब उसे जीवन जीने में एक नया अर्थ मिलता है। इस उपन्यास के संदर्भ में डॉ. शशिकला त्रिपाठी ठीक ही कहती है - ''शेष कादम्बरी' की रूबी दी भी सत्तर वर्षीय महिला है। घुटनों के दर्द से पीड़ित होते हुए भी वे

बिलानागा निश्चित समय पर सोशल वर्क करने के लिए 'परामर्श' नामक संस्था में जाती हैं। 'परामर्श' उनकी निजी संस्था है। वैयक्तिक दु:खों को सहते हुए उनमें एक बार मृत्यु की इच्छा जागृत हुई थी चालीस वर्ष की अवस्था में। किन्तु, जब सामाजिक-कार्य में अपने जीवन को संलग्न करती हैं तो उन्हें जीवन का एक नया अर्थ मिल जाता है। पारिवारिक और सामाजिक हिंसा की शिकार युवतियों की उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न करती हैं।''[1]

3.2.1 **आरंभ -**

वस्तुत: हर उपन्यास के आरंभ की शैली अलग-अलग परिलक्षित होती है। 'शेष कादम्बरी' उपन्यास का आरंभ आत्मकथात्मक शैली में किया है। जब उपन्यासकार उपन्यास में पात्र दूवारा उसका स्थान ग्रहण करते हुए प्रथम पुरूष की ओर से कथावस्तु का वर्णन करता है तब उसे आत्मकथात्मक शैली कहा जाता है। प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ आत्मकथात्मक शैली में हुआ है। उपन्यास के आरंभ में पात्र मुसदूदीलाल अपना परिचय देते हुए कहता है - ''मैं, मुसदूदीलाल, वल्द कन्हाई लाल, उम्र तिरपन वर्ष, धर्म से हिन्दू, व्यावसायी; 108 बी, चक्रबेरिया लेन, कलकत्ता - 20 का रहनेवाला, इस आवेदन के दूवारा पूरी ईमानदारी और विस्तार के साथ यह घोषित करता हूँ -''[2] मुसदूदीलाल का यह कथन अपना परिचय देते हुए, अपना आवेदन पूरी ईमानदारी और विस्तार से घोषित करता है। अत: स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ आत्मकथात्मक शैली में हुआ है।

3.2.2 **विकास -**

'शेष कादम्बरी' के विकास में अत्यंत धनी मारवाड़ी परिवार की सत्तर वर्षीय, वृदूध महिला रूबी गुप्ता है जो बचपन से वैधव्य भोग रही है उसके माध्यम से नारी की पीड़ा तथा दु:ख का चित्रण है।

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका रूबी दी 'परामर्श' जैसी संस्था निकालकर समाजसेवा और देशोदूधार करते हुए अपने होने का अर्थ खोजने लगती है - ''छब्बीस सालों से तरह-तरह की दुखियारी, जमाने की मारी, बेचारी औरतों के लिए यह संस्था 'परामर्श' चलाकर- जिसे चलाते-चलाते वह खुद अपने लिए तक रूबी गुप्ता से रूबी दी बन गई थी।''[3]

---

1. डॉ. शशिकला त्रिपाठी - उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, पृष्ठ - 114
2. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 5
3. वही, पृष्ठ - 6

इस परामर्श संस्था में अब तक सायरा, आभा जैन, माया बोस, सविता और फरहा आदि स्त्रिया 'परामर्श' लेने आती है और अपनी कथा रूबी दी के सामने बताती है। इन सभी नारियों की कथाएँ प्रस्तुत उपन्यास में अध्याय के रूप में प्रस्तुत है। मूलत: उपन्यास में रूबी का जीवन-चरित्र महत्त्वपूर्ण है। रूबी दी पिताजी की गोद ली हुई लड़की है। रूबी दी की नातिन कादम्बरी रूबी दी के जन्म के विषय में कहती है - "आगे मैंने पाया कि इस व्यक्ति-विशेष का जीवन अपने समय, अपने जमाने, अपने खास तबके का सच बोलता है। आपकी कथा में हरेक घटना का सम्बन्ध उस एक महा-महनिर्णय - रूबी दी को गोद लिया जाना - से जुड़ा हुआ सुसम्बद्ध है।"[1] रूबी दी कौन है? उसके माता-पिता कौन है? इसका पता उस रात में लगता है जिस रात में माँ ने उसे थप्पड मारकर भुखा सुलाया था। जिसके कारण रूबी दी की नींद उचट गई थी। उसी समय रूबी दी की मामी (माँ) माँ (बुआ) से कह रही थी कि "बाई, आपके तो बच्चे हुए नहीं। आपने पैदा नहीं किए न, इसलिए आपको मालूम नहीं कि थप्पड़ मारकर भूखे बच्चे के सोने पर माँ को कितनी तकलीफ होती है।"[2] उसी समय उसे पता लगता है कि मेरी माँ, मेरी सच्ची माँ नहीं है। उन्होंने मुझे गोद लिया है। इसी कारण वह मुझ से प्यार नहीं करती। पिताजी उसके नहीं हैं क्योंकि वे अपना अकेलापन दूर करने के लिए - "रूबी का अकेलापन जानते ही नहीं थे, वे स्वयं भी उसे भोगते थे।"[3] परिवार में 'सतपीढ़िया शाह' की लड़की ऐसा ही रूबी दी का परिचय था। रूबी दी जब युवा होती है तब आदिल नामक मुस्लिम युवक से मानसिक लगाव हो जाता है लेकिन जब यह संबंध तन से न होकर सिर्फ मन से था यह पता चलने पर माँ बहुत खुश होती है।

बड़ी होते ही उसकी शादी सुधीर से हो जाती है। सुधीर ने अपना सारा जीवन दूसरों के लिए बिताया है। उनके काम से बढ़कर उनके लिए कभी कुछ नहीं हुआ। रूबी दी पिताजी से कहकर बीच-बीच में चेक कटवाकर अपने परिवारवालों को देती है। सुधीर भी सौतेली माँ तथा भाई के लिए गाड़ी छोड़ देते हैं। फिर भी वे लोग रूबी दी को घर में सतपीढ़िया शाह की बेटी कहकर व्यंग्य से चिढ़ाते हैं। इससे तंग आकर रूबी दी 'हाइली सुसाइड' अर्थात् आत्महत्या की बात उसके मन में आई थी। उसकी इस हरकत पर सुधीर को आश्चर्य होता है। उसने सुधीर को सिर्फ इतना ही कहा था कि "इसलिए मैं कोई-कोई बात एकदम भूल जाती हूँ।

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 162
2. वही, पृष्ठ - 29
3. वही, पृष्ठ - 16

ऐसे लगता है, मेरी स्मृति में सोलह छेद हो गए हैं, उनमें से कोई-कोई बात एकदम छनकर निकल जाती है।"[1] रूबी दी एक अदृश्य आदमी के रूप में देवीदत्त मामा को मानती थी। वह देवीदत्त में हर समय किसी आदर्श की तलाश करती थी। देवीदत्त मामा ने अपने असफल प्रेम की याद को जिंदा रखने के लिए रूबी दी का नाम रूबी रख दिया था।

मिस्टर वियोना सन् 1893 में याने सौ साल पहले बीस साल की उम्र में पत्रकार बनकर आए थे। उनकी एक 'इंडियन पीव शो' नामक किताब थी। हमेशा वे उसके सातवें तथा नौंवे अध्याय पर ही रूबी दी से चर्चा करते हैं। वे आठवें अध्याय की बात हमेशा टाल देते थें क्योंकि आठवें अध्याय में अफीम की बात थी। वे कहते हैं - "अफीम के कमाई से आया हुआ पैसा पाँच पीढ़ियों से ज्यादा नहीं टिक सकता।"[2] उस समय रूबी दी के पिता का व्यापार विदेश में चलता था। उसी वक्त मिस्टर वियोना को अपने घर में हमेशा बंद रहनेवाला कमरे के बारे में पूछती है। तब वह बताते हैं - "तुम्हारे पिता की बहन यानी तुम्हारी बुआ ने एक अंग्रेज से प्रेम में पड़कर उस कमरे में अपने को जला डाला था।"[3] इससे रूबी दी को पता चलता है कि नीचे कमरे में या हमेशा बंद रहनेवाले कमरे में जल मरनेवाली बुआ का अंग्रेजी प्रेमी कोई और नहीं, खुद मिस्टर वियोना थे। एक रात में मिस्टर वियोना गंगा नदी में न जाने क्या खोज रहे थे तब उनकी नाव तूफान में उलट गई। तीन दिन के बाद फूली हुई लाश जेटी के पास गंगा नदी से निकालकर तटपर रख गई थी। रूबी दी के पिताजी ने उन्हें गंगा नदी के पास बिना नाम पते के ही कब्र में गाड़ दिया था।

रूबी दी को सुधीर का स्पर्श होना भी उनके परिवारवालों को अच्छा नहीं लगता था। सुधीर ने रूबी दी की चुड़ियाँ को स्पर्श करने पर बड़ी भाभी उसे टोकती है। वजह यह कि रूबी दी बाहर की दुनियाँ के साथ खुलती जाती है और सुधीर उतने ही अंदर की दुनियाँ में धंस जाते हैं। सुधीर की अचानक मृत्यु ने रूबी दी को कई तरीकों से तोड़ा था। इसी कारण सभी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ रूबी दी को निभानी पड़ती हैं। रूबी दी की बेटी गौरी की सहानुभूति सुधीर के प्रति थी, जिसकी याद उसे बार-बार सताती है। इतना ही नहीं वह सपने में भी दिखाई देती है। वह गौरी के प्रेम न करने पर वह आपत्ति उठाती है। रूबी दी को अब वह

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 90
2. वही, पृष्ठ - 46
3. वही, पृष्ठ - 49

'आशियाना' की जरूरत नहीं थी। वह फरहा को वही आशियाना दिया जा सके जिसमें वह रहना चाहती है।

रूबी दी और वासुमणि ने 'गुड़ फ्रेंडस् सोसायटी' निकाली थी। वहाँ से उसे हटाया गया था। फिर से 'वामा स्टडी ग्रुप' निकली और अंत में अकेली ने 'परामर्श' संस्था स्वयं निकाली। जिस समय रूबी दी को गुड़ फ्रेंडस् सोसायटी से निकाला गया था तब गौरी भी रूबी दी से बात नहीं करती थी। उस समय रूबी दी सोचती है - "देखा प्रीति तुमने? सारी जिंदगी बीत जाती है और अपने सबसे नजदीक के लोगों को इतना भरोसा तक हम नहीं दे पाते।"[1]

रूबी दी जब 'परामर्श' संस्था चला रही थी तब उस संस्था में मनोरंजन व्यापारी सायरा को ले आया था। सायरा मंदबुदधि की लड़की है। सायरा को रूबी दी ने मुस्लिम से क्रिश्चियन बनाना जरूरी समझा था। 'परामर्श' में आई एक दूसरी औरत आभा जैन है, जिनके बीस साल की लड़की ने आत्महत्या की थी। उस लड़की का 'पोस्टमार्टम' मोमिनपुर के मार्ग में हुआ था। जहाँ दुर्गंधी फैली हुई थी वहाँ डोम टेबुल पर एक नंगी लड़की की लाश प्लास्टिक के खोल में रखी थी। रूबी दी खुद के मौत के बारे में सोचती है - "आदमी मरा सो मरा। पर यह सच है कि आत्मा होने की बात तसल्ली देती है कि क्या जीवन का कोई अन्तिम अर्थ है, वरना कुछ भी जानने-सीखने-करने का क्या मतलब?"[2]

'परामर्श' संस्था में रूबी दी के पास माया बोस भी आती है। दसवीं क्लास पास रिटायर्ड स्कूल मास्टर की लड़की का कार्यक्षेत्र था थिएटर रोड़। आठ साल में ही उसके पिता उसे अपने भोग का साधन बनाकर विषकन्या बनाकर बेटी माया का जीवन नष्ट कर देते हैं, जिस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती पर मुग्ध हो गए थे। माया रात में अपने घर से बहुत दूर शहर चली जाती है और सुबह वापस लौट आती है। सारी दुनियां सोती है तब मास्टर जी की माया जागती है।

सविता को भी उसके बाप ने रंडी कहा था। रूबी दी ने यह 'रंडी' शब्द देवीदत्त मामा के मुख से बार-बार सुना था। सविता को न बाप का आधार मिला था, न भाई-भाभी का और न पति का। सविता का पति सुंदर से सुंदर लड़कियों को लेकर घूमता है यह बात

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 138
2. वही, पृष्ठ - 40

सविता को रेप से भी अधिक कष्टदायक लगती है। उसके पति ने कोलकत्ते की इसी पिछड़ी सविता को दिल्ली में ही अपने पाँव की पाँव-पोश बनाना चाहता था, जैसे - "बाहर जाते समय पाँव पोछ जाओ। बाहर से आते वक्त फिर पाँव पोंछ लो।"[1] रूबी दी सोचती है कि कितनी हिम्मत है इस लड़की में उसमें ऐसी हिम्मत नहीं है। अत: कहना सही होगा कि रूबी की दर्दभरी कहानी के साथ-साथ, सायरा, आभा जैन तथा माया बोस आदि के पीड़ादायी जीवन का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास के विकास में दृष्टिगोचर होता है।

3.2.3 **संघर्ष -**

उपन्यास में विकास के पश्चात् संघर्ष का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में कोई भी पात्र, कहीं भी संघर्ष करता हुआ नजर नहीं आता। पूरा उपन्यास सपाट बयानी प्रतीत होता है। प्रस्तुत उपन्यास में नायिका रूबी दी की पीड़ा तथा दयनीय जिंदगी का चित्रण तो अवश्य मिलता है लेकिन वह कहीं भी संघर्ष करती हुई नजर नहीं आती। रूबी दी के अंतर्गत मन में संघर्ष की ज्योत निरंतर पनपति है परंतु उसका यह संघर्ष कहीं पर भी प्रकट नहीं होता। प्रस्तुत उपन्यास में यह एक नया प्रयोग है जिसमें संघर्ष नहीं मिलता। लेकिन जो नारी पात्र रूबी है, वह अपनी पीड़ा, दु:ख, दर्द तथा वेदना आदि को घटना या प्रसंग को किसी पात्रों या चरित्रों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि नारी की मनोवैज्ञानिकता को प्रस्तुत करने का मार्ग ही अलका सरावगी की शेष यात्रा है जिसके कारण उसकी प्रासंगिकता है। कहना होगा कि संघर्ष न होना औपन्यासिक शिल्प का नया प्रयोग है जो प्रस्तुत उपन्यास को कलात्मकता प्रदान किए बिना नहीं रहता।

3.2.4 **चरमसीमा -**

प्रस्तुत उपन्यास में संघर्ष न होने के कारण चरमोत्कर्ष या चरमस्थिति नजर नहीं आती। उपन्यास कथा में तीव्रता की स्थिति न होने के कारण उस तीव्रता का अवसादन दिखाई नहीं देता। प्रस्तुत उपन्यास में चरमसीमा न होने के कारण औपन्यासिक शिल्प का यह नया प्रयोग लगता है। चरमसीमा न होना प्रस्तुत उपन्यास की खासियत है। सार यह कि चरमस्थिति न होने के कारण यह उपन्यास पारंपरिक ढाँचे तोड़ता है।

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 73

3.2.5 अंत -

प्रस्तुत उपन्यास के अंत में नायिका रूबी दी को पिताजी, माँ, सुधीर, गौरी, कादम्बरी, सविता, वासुमणि और निवेदिता आदि सभी सदस्यों की याद आती है। रूबी दी को गौतम के द्वारा यह पता चलता है कि कादम्बरी मद्रास गई है और वहाँ से वह अंदमान जानेवाली है तब रूबी दी अपना वसीयतनामा लिखती है - ''सायरा को कुल पच्चीस हजार रूपए देने के बाद पिछली वसीयत की तरह मेरी चल-अचल सम्पत्ति की एकमात्र वारिस मेरी नातिन कादम्बरी ही है। मैं कादम्बरी से यह प्रार्थना करती हूँ कि वह सविता को आत्मनिर्भर जिंदगी जी पाने के लिए खुद को मिलनेवाले नकद रूपयों में से पच्चीस प्रतिशत रूपए दे।''[1] अंत में लेखिका ने भारतीय नारी की उदारता को चित्रित किया है। नारी कष्ट को वह सविता के माध्यम से स्पष्ट करती है - ''यदि कष्ट की कोई जाति होती है, तो उस नाते मैं सविता के इतने करीबी रिश्ते की हूँ जितना दुनियां में शायद ही कोई किसी का होता है।''[2]

निष्कर्षत: कहना गलत नहीं होगा कि प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ आत्म-कथात्मक शैली में हुआ है। उपन्यास के विकास में कादम्बरी ढूँढने की प्रचेष्टा होने के कारण 'शेष कादम्बरी' एक ऐसी औपन्यासिक कृति है, जिसमें जीवन और उपन्यास गड्ड-मड्ड हो जाते हैं। कादम्बरी शायद अपने खिलंदड अंदाज में नानी के कहानी के बारे में कह सकती है कि 'जीवन ही क्या, जिसमें उपन्यास न हो और वह उपन्यास ही क्या जिसमें जीवन न हो।' रूबी दी सविता का कल्याण करना चाहती है लेकिन उनका यह कदम उन्हें फिर एक बार आदमी और आदमी के बीच खड़ी दीवारों तक लाकर छोड़ देता है। संघर्ष और चरमसीमा उपन्यास में कहीं भी दिखाई नहीं देती। अंत में रूबी दी भारतीय नारी की उदारता का परिचय करा देती है। अंत में कहना सही होगा कि प्रस्तुत उपन्यास में संघर्ष तथा चरमसीमा की स्थिति न होने के बावजूद भी आरंभ, विकास तथा अंत आदि की दृष्टि से विषयवस्तु कलात्मक परिलक्षित होती है।

3.3 कोई बात नहीं :

'कोई बात नहीं' अलका सरावगी का प्रकाशन क्रम की दृष्टि से तीसरा उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 2004 में राजकमल प्रकाशन से हुआ है। प्रस्तुत

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 199
2. वही, पृष्ठ - 199

उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने शारीरिक रूप से अक्षम बेटा शशांक और उसकी माँ के प्रेम और दु:ख के साझेदारी के प्रसंगों के साथ ही उनके सुंदर और सम्मानपूर्ण जीवन जीने की अभिव्यक्ति दी है। प्रतियोगिता जीवन का परममूल्य समझकर इन्सान ने जिजीविषा रखनी चाहिए।

3.3.1 आरंभ -

उपन्यास की सफलता के लिए उसका आरंभ कौतुहलवर्धक तथा रोचक होना चाहिए। वस्तुत: उपन्यास का आरंभ प्रकृति-चित्रण, स्थान, काल तथा युग-चित्रण से किया जाता है। अलका सरावगी के 'कोई बात नहीं' उपन्यास का आरंभ ठीक उसी प्रकार हुआ है। लेखिका उपन्यास के आरंभ में लिखती हैं - ''देख, इस पानी को देख। गंगा का बहता पानी कितना पानी, न जाने कब से बहता आया। इसका कोई आदि है? कोई अंत है? और देख, यह हावड़ा पुल। इस किनारे से उस किनारे। इधर कलकत्ता, उधर हावड़ा। देखती है न? देखती-देखती तो बूढ़ी हो गई। बच्ची से बूढ़ी। पर क्या देखा? क्या समझा? क्या पाया? पूछती है कि ऐसा क्यों हुआ? 'क्यों' का परदा मत उठा बावली। उठेगा तो यों भी नहीं, पर कोशिश भी मत कर। नहीं तो राह भटक जाएगी।''[1] स्पष्ट है कि उपन्यास का आरंभ कौतुहल-वर्धक, रोचक और जिज्ञासा पैदा करता है। साथ ही प्रकृति चित्रण तथा स्थान का भी जिक्र मिलता है। अत: कहना होगा कि उपन्यास का आरंभ कलात्मक है।

3.3.2 विकास -

उपन्यास के आरंभ के बाद विषय-वस्तु का स्वाभाविक विकास दिखाई देता है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक शशांक सतरह साल का लड़का है। जो दूसरों लड़कों की तरह चल और बोल नहीं सकता है। वह चलते समय हड़बड़ाता है और बोलते समय हकलाता है। प्रतियोगिता उसके जीवन का परम मूल्य है। वह जन्म से ही संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। एक दिन स्कूल में लंच ब्रेक में बेहोश होता है और बाद में ठीक होने पर उस घटना के पीछे होनेवाला कारण डॉ. गांगुली को बताता है - ''सेरेब्रल पैलसी। मेरी खास प्रॉब्लम को एथिटोयड

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 6

कहते हैं जिसमें बैलेंस की - संतुलन की समस्या रहती है। चलते-चलते झटका लग जाता है, अचानक चलना गड़बड़ा जाता है। पैदा होते समय डॉक्टर ने ऑपरेशन करने में देर की। यही इसकी वजह है। एनोक्सिया हुआ था उस समय - दिमाग में ऑक्सिजन की कमी। चलना शुरू किया छह साल की उम्र में।''[1] कहना आवश्यक नहीं कि डॉक्टर की लापरवाही से शशांक अपाहिज हो गया था।

शशांक चलते समय हकलाता है लेकिन एक दिन स्कूल के लंच ब्रेक में बेहोश होने के बाद उसका चलना और बोलना बंद हो जाता है। उसी संदर्भ में उसकी माँ कहती है - ''शशांक तुम जब बोलने लगोगे, मैं तुम्हें कभी जिंदगीभर चुप रहने को नहीं कहूँगी।''[2] स्पष्ट है कि शशांक अपाहिज तो है ही लेकिन अचानक बेहोशी के कारण गुँगा भी हो जाता है। तभी से प्रतियोगिता उसके जीवन परम मूल्य बन जाता है। माँ उसके जीवन का अहम भाग है जिसके कारण वह हर कठिनाइयों का सामना करता है। उसकी माँ उसका दिन-रात खयाल रखती है। वह हर वक्त अपने बेटे की भलाई चाहती है। 'भागवत कथा' सुनानी आई पंड़ित जी की बेटी सुमनबाई शशांक की माँ को शशांक के भविष्य के बारे में कहती है - ''आपने तो नहीं पूछा भाभी, पर मैं कहती हूँ कि आपका बेटा ठीक हो जाएगा। एकदम पहले जैसा हो जाएगा।''[3] तब उसकी माँ कहती है - ''पहले जैसा हो जाए, बाई, तो मैं समझूँगी कि मेरे जीवन की सारी इच्छाएँ पूरी हो गई।''[4] स्पष्ट है कि शशांक की माँ अपने जीवन की सारी खुशियाँ अपने बेटे के खुश होने में मानती है।

शशांक का एकमात्र दोस्त है आर्थर, जो एंग्लो इंड़ियन है। वह स्कूल में हर वक्त शशांक के साथ रहता है। वह शशांक के स्कूली जीवन में सुख-दु:ख का साझेदार है। वह हर वक्त हँसने-हसाने का बहाना ढूँढता रहता है। उन दोनों में दोस्ती होने के कारण वे दोनों स्कूल में साथ-साथ रहते हैं। आर्थर गैरबराबरी का होने के कारण दादी उसके बारे में कहती है - ''एक तो दूसरी जात का, और ऊपर से पढ़ने में निखट्टू। और चलो तुम्हें अच्छा लगता है और उसे दोस्त बनाय ही है, तो उसे अच्छी बातें सिखाओं। उससे बुरी बातें क्यों सीखते हो?''[5] दादी दोनों तरफ से संभालती हुई बोलती है।

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 113
2. वही, पृष्ठ - 129
3. वही, पृष्ठ - 191
4. वही, पृष्ठ - 191
5. वही, पृष्ठ - 29

शशांक का जीवन चारों ओर से कथा तथा किस्सों भरा है। एक तरफ उसकी आरती मौसी है जिसकी कहानियाँ कहीं छपती नहीं प्राय: वापस लौट आती है। शशांक उन कहानियों की चिंता करता है। इन कहानियों का आरंभ और अंत शशांक के समझ में नहीं आता। दूसरी तरफ उसकी दादी है जो अठ्ठाईस साल अपने जीवन में विरह, दु:ख तथा पीड़ा भोगती रही है। दादी नाटी-खटी होने के कारण उसकी शादी पैसे के बूते पर होती है। अपने ही घर में वह इस पार से उस पार किसी के सहारे बिना नहीं जा सकती थी। वह अपना जीवन बिलकुल जेल के कैदी जैसा बिताती है। चीन के युद्ध में नेहरू ने देश के लिए मदद की 'अपील' करने पर वह अपने हाथ में होनेवाली सोने की चुडियाँ अपनी सहेली द्वारा भेज देती है क्योंकि वह कैदी जीवन जीने के लिए मजबूर थी। जिसके कारण शशांक के मन में दादी के प्रति सहानुभूति पैदा होती है। उसे अपने दादाजी या इन लोगों के नकली जीवन जीने का कारण समझ में नहीं आता। वह उसके लिए प्रश्नचिह्न बनकर रह जाता है।

शशांक को हर शनिवार के दिन विक्टोरिया मेमोरियल मैदान में मिलनेवाला जतीन दा दो रूपों का आदमी लगता है। वह अपनी दादी से पूछता है - ''एक आदमी के दो रूप हो सकते हैं?''[1] तब दादी उन्हें तीन रूपोवाली मनहठी की कहानी तथा चार साड़ियों के लिए जान देनेवाली औरत की कहानी बताती है। दादी शशांक से पूछती है कि तुम्हें ऐसा कौन-सा व्यक्ति मिला कि जो दो रूपोंवाला है। शशांक को जतीन दा, दो रूपोंवाला आदमी लगता है। जतीन दा जो कहानियां बताता है वह आतंक और हिंसा से जूड़ी होती है। वह शशांक को, आर्थर के समान होनेवाला उसका मित्र जैक्सन तथा बीस साल न्याय के लिए झगड़नेवाले शीर्षेन्दु की कहानी बताता है। शशांक को इन कहानियों के बारे में संदेह प्रकट होता है। उनकी कहानियां शशांक को आत्मकथात्मक लगती है लेकिन उसके संदेह निराकरण के लिए उसके पास कोई रास्ता नहीं है।

अचानक शशांक के जीवन में एक भयानक घटना-घटित होती है जिसके कारण उसके जीवन के अनेक टुकड़े हो जाते हैं और वे सारे टुकड़े इस तरह तीतर-बितर हो जाने के कारण उन्हें पहचानना भी मुश्किल हो जाता है। तभी शशांक की यह कथा आरती मौसी

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 55

लिखती है। शशांक को एक दिन अचानक स्कूल के लंच ब्रेक की छुट्टी में उसके चारों तरफ की दुनियां धुँधली होते-होते काली होकर बेहोश हो जाती है। शशांक को अस्पताल ले जाने पर उसकी जान तो अवश्य बचती है लेकिन उसको जो थोड़ा बहुत चलना या बोलना आता था वह बंद हो जाता है। लेकिन उसकी माँ की जिद के कारण वह व्हिल चेअर पर स्कूल जाता है। माँ स्कूल में आकर दिल को छूनेवाला भाषण देती है क्योंकि छात्र उसके प्रति सहानुभूति जताएँ। वह उसे 'टाइपराइटर' के द्वारा परीक्षा देने के लिए मजबूर करती है। मैथ्स का पेपर माँ उसे याचना के भाव से कहती है - "मैं भी क्या करूँ? क्या मैंने तुम्हारी हर तकलीफ को अपनी तकलीफ की तरह नहीं झेला है?"[1] कहना आवश्यक नहीं कि शशांक की माँ हर तकलीफ को झेलती रही है। शशांक अपनी कोशिश तथा दवाओं के बूते पर धीरे-धीरे नहाना-धोना, खाना-पीना तथा कपड़े पहनना आदि काम स्वयं कर रहा है। साथ ही वह धीरे-धीरे बोल भी रहा है। लेकिन शशांक के इस कार्य में माँ हर वक्त उसका खयाल रखती है। शशांक को माँ के निश्चल, अद्‌भुत प्रेम और सहयोग के कारण अपने जीवन के सारे निर्णय ताकतवर लगते हैं।

3.3.3 संघर्ष -

संघर्ष वह स्थल है जहाँ पाठक 'अब क्या होगा' कि स्थिति में डाँवाडोल होता है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक शशांक अपने जीवन में आई हुई बीमारी से संघर्ष करता हुआ नजर आता है। वह पैदा होने के समय से ही संघर्ष करता है। आठ साल की उम्र में शशांक ने बुआ के घर आए मद्रास के एक डॉक्टर को अपने संघर्ष के बारे में बताया कि "पैदा होते समय गले में लिपटी कार्ड या नली, डॉक्टर के माँ का सिजेरियन ऑपरेशन करने में लापरवाही से देर करने के कारण उसके दिमाग में हुई ऑक्सिजन की कमी, पहले तीन महीनों में कई बार हुई ऐंठन, देर से गरदन सँभालना, देर से बैठना, खड़े होना - यानी 'माइल्स्टोन्स डिलेड' आदि आदि।"[2] शशांक के उक्त कथन से स्पष्ट है कि डॉक्टर के लापरवाही के कारण उसे संघर्ष करना पड़ता है।

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 204
2. वही, पृष्ठ - 115

शशांक एक दिन स्कूल जाने पर वह 'लंच ब्रेक' में उसे अजीब संघर्ष का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास में शशांक के संघर्ष के बारे में लिखा है - "चारों तरफ की दुनियां धुँधली होते-होते काली हो रही हो। उसने कोशिश की थी वह अपनी पानी की बोतल से पानी पी ले ताकी सब ठीक हो जाए, पर पता नहीं क्या हुआ था। वह शायद गिर गया और पानी की बोतल भी उसे भिंगोते हुए गिर गई।"[1] स्पष्ट है कि शशांक का संघर्ष अपने जीवन में आई हुई बीमारी से है। वस्तुत: कड़ा संघर्ष उपन्यास में कहीं भी नहीं दिखाई देता। बल्कि जो संघर्ष है वह नायक का अपनी बीमारी से छुटकारा पाने के लिए है।

3.3.4 चरमसीमा -

चरमसीमा उपन्यास का वह स्थल है जहाँ उपन्यास की मुख्य कथा में चरमोत्कर्ष की प्राप्ति होती है। शशांक अपनी बीमारी से छुटकारा पाकर, धीरे-धीरे ठीक होकर चलने-बोलने लगता है। साथ ही वह अपना काम-धाम खुद करता है। शशांक की यह हालत माँ किसी को फोन पर बता रही है - "शशांक अब अपने सारे काम खुद कर सकता है - नहाना-धोना, खाना-पीना, कपड़े पहनना वगैरह-वगैरह। वह दीवारें और फर्नीचर पकड़कर इधर-से-उधर जा सकता है।"[2] शशांक के माँ का यह कथन उपन्यास की चरमस्थिति का परिचय देता है जहाँ विषयवस्तु तीव्रता से अंत की ओर बढ़ती है।

3.3.5 अंत -

प्रस्तुत उपन्यास के अंत में शशांक की माँ जीवन की तमाम शिकायतें ईश्वर से करती हैं। उस समय शशांक के दिल में नफरत तथा निर्दयता के भाव निर्माण होने के बावजूद भी एक-दूसरे से अटूट प्रेम में जुड़े रहते हैं। जब शशांक के दिल में कही-अनकही माफी और दर्द के भाव उमड़ आते हैं तब उसके माता-पिता एक-दूसरे को अपने-अपने अंदर देखने लगते हैं। तब शशांक कहता है - "कोई बात नहीं"[3] कहना आवश्यक नहीं कि शशांक का उक्त कथन उसके गुँगेपन पर मात करता है । उनके यह शब्द इंद्रधनुष्य की तरह खुले आसमान में फैल जाते हैं जो एक मंत्र की तरह समाज को जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं।

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 110
2. वही, पृष्ठ - 218
3. वही, पृष्ठ - 220

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ कौतुहलवर्धक तथा जिज्ञासा निर्माण करनेवाला है। साथ ही स्थान तथा प्रकृति-चित्रण का जिक्र भी कराता है। विकास में लेखिका ने शशांक के माध्यम से जिद्द तथा हिम्मत न हारने का मंत्र दिया है। नारी-मुक्ति की कामना के साथ-साथ हिंसा और आतंक की कहानियाँ सामाजिक स्वास्थ्य के लिए कितनी हानिकारक होती है यह बताने का लेखिका का महत् प्रयास रहा है। संघर्ष के माध्यम से यह सबक मिलती है कि जिस प्रकार शशांक अपने जीवन में आई हुई बीमारी से संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है उसी प्रकार मनुष्य ने भी अपने जीवन में आई हुई कठिन परिस्थिति पर मात करते हुए आगे निकल जाना चाहिए। हिम्मत न हारते हुए नए जीवन की शुरूआत की प्रेरणा देकर उपन्यास का अंत दिखाया है। अत: कहना आवश्यक नहीं कि प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ, विकास, संघर्ष, चरमसीमा तथा अंत आदि का कलात्मक अंकन है।

निष्कर्ष :

अलका सरावगी के उपन्यासों के विषयवस्तु का कलात्मक मूल्यांकन करने के उपरांत जो निष्कर्ष मिले हैं, वे यहाँ प्रस्तुत हैं -

1. 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास का आरंभ वर्णनात्मक, कौतुहलवर्धक, रोचक तथा जिज्ञासा उत्पन्न कर स्थान का भी जिक्र कराता है। विषय-वस्तु के विकास में किशोरबाबू जिस प्रकार अपने जीवन में आई हुई बीमारी या समस्याओं को बाइपास करके सुविधाजनक रास्ते या बगल के रास्ते से आगे निकल जाते हैं उसी प्रकार हर मनुष्य ने अपने जीवन में आई हुई समस्या से बाइपास कर आगे निकल जाना चाहिए। साथ ही आजादी के पहले और बाद का लेखा-जोखा तथा मारवाड़ी समाज का चित्रण विषय-वस्तु के विकास को कलात्मक बना देता है। बावजूद इसके कि उपन्यास में अनेक विषय मौजूद हैं जो आज प्रासंगिक लगते हैं। विषयवस्तु के संघर्ष में किशोरबाबू अपने जीवन जीने के लिए या बीमारी से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष करते हुए परिलक्षित होते हैं। इसके अलावा कुछ पुरूष पात्र तथा नारी पात्र भी संघर्ष करते हैं। उपन्यास की

चरमसीमा में आजादी की 50 वीं वर्षगाँठ का चित्रण मिलता है। साथ ही किशोरबाबू की बाइपास सर्जरी होना तथा तीनों मित्रों का अर्थात् किशोरबाबू, अमोलक तथा शांतनु का मिलना उपन्यास की चरमस्थिति का ही द्योतक है। अंत फिल्मी तथा प्रतीकात्मक तो है ही साथ ही गांधीवादी विचारों को दोहराकर स्वदेश प्रेम जगाता है। अंतत: कहना सही होगा कि प्रस्तुत उपन्यास का आरंभ, विकास, संघर्ष, चरमसीमा और अंत आदि उपन्यास की कलात्मकता का एक नया प्रयोग है इसमें संदेह नहीं।

2. 'शेष कादम्बरी' उपन्यास का आरंभ आत्मकथात्मक शैली में हुआ है। उपन्यास के विकास में कादम्बरी ढूँढने की प्रचेष्टा होने के कारण 'शेष कादम्बरी' एक ऐसी औपन्यासिक कृति है, जिसमें जीवन और उपन्यास गड्ड-मड्ड हो जाते हैं। कादम्बरी शायद अपने खिलंदड अंदाज में नानी के कहानी के बारे में कह सकती है कि 'जीवन ही क्या, जिसमें उपन्यास न हो और वह उपन्यास ही क्या जिसमें जीवन न हो'। रूबी दी सविता का कल्याण करना चाहती है लेकिन उनका यह कदम फिर एक बार आदमी और आदमी के बीच खड़ी दीवारों तक लाकर छोड़ देता है। प्रस्तुत उपन्यास के विषय के माध्यम से लेखिका ने रूबी दी की पीड़ा, दु:ख तथा दयनीय जीवन का चित्रण कर नारी-मुक्ति की हिमायत की है। साथ ही पारिवारिक तथा सामाजिक हिंसा की शिकार हुई युवतियों की उलझनों को सुलझाना, उन्हें अकेलापन तथा आत्महत्या जैसी भयावह स्थितियों से दूर कर आत्मविश्वास जगाना, उपेक्षिता, उत्पीड़िता स्त्री को उसके अधिकार दिलाना, वेश्याओं को उसके अधिकार दिलाना तथा पुरूषवर्चस्व समाज की विसंगतियों का संकेत देना आदि विषय विषयवस्तु के विकास में अंतर्निहित हैं। संघर्ष तथा चरमसीमा उपन्यास में कहीं भी दिखाई नहीं देती। अंत में रूबी दी भारतीय नारी की उदारता का परिचय करा देती है। अत: कहना होगा कि प्रस्तुत उपन्यास में संघर्ष तथा चरमसीमा की स्थिति न होने के बावजूद भी आरंभ, विकास और अंत आदि की दृष्टि से विषयवस्तु कलात्मक परिलक्षित होती है।

3. अलका सरावगी के 'कोई बात नहीं' उपन्यास का आरंभ कौतुहलवर्धक, रोचक और जिज्ञासा पैदा करता है। साथ ही प्रकृति-चित्रण तथा स्थान का भी जिक्र मिलता है।

विकास में लेखिका ने शशांक के माध्यम से जिद्दी बनकर हिम्मत न हारने का मंत्र दिया है। नारी-मुक्ति की कामना के साथ-साथ हिंसा और आतंक की कहानियाँ सामाजिक स्वास्थ्य के लिए कितनी हानिकारक होती है यह बताने का लेखिका का महत् प्रयास रहा है। संघर्ष के माध्यम से यह सबक मिलता है कि जिस प्रकार शशांक अपने जीवन में आई हुई बीमारी से संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है उसी प्रकार मनुष्य ने भी अपने जीवन में आई हुई कठीन परिस्थिति पर मात करते हुए आगे निकल जाना चाहिए। हिम्मत न हारते हुए नए जीवन की शुरुआत की प्रेरणा देकर उपन्यास का अंत दिखाया है। सार यह कि 'कोई बात नहीं' उपन्यास का आरंभ, विकास, संघर्ष, चरमसीमा तथा अंत आदि का एक नया, प्रयोगात्मक तथा कलात्मक अंकन है।

अंततः कहना सही होगा कि विवेच्य उपन्यास विषयवस्तु की दृष्टि से कलात्मकता का एक नया प्रयोग है इसमें संदेह नहीं।

* * * *